अध्याय 10

स्वतंत्रता की ओर

(Towards Freedom)

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935

ब्रिटिश सरकार ने अगस्त, 1935 को गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट पारित किया। यह एक्ट इन सिफारिशों तथा मंत्रणाओं पर अधारित था:-

(a) साईमन कमीशन की रिपोर्ट
(b) नेहरू समिति रिपोर्ट
(c) तीन गोलमेज सम्मेलनों की वार्ताएं
(d) श्वेत पत्र-1933
(e) ज्वाईंट सेलेक्ट कमेटी रिपोर्ट
(f) लोथियान रिपोर्ट, जिसने एक्ट में निर्वाचन पद्धति की व्यवस्था का प्रावधान किया था।

ब्रिटिश सरकार यह भली-भांति जानती थी कि विश्व युद्ध के पश्चात भारत में हालात चिंताजनक हैं तथा वह किसी बड़े जनांदोलन को लेकर हमेशा चिंतित रहती थी। हालांकि सरकार ने आंदोलनों को आसानी से दबा दिया था। परंतु वह हमेशा फूट डालो शासन करो की नीति का अनुसरण करती थी। वह यह अच्छी तरह जानती थी कि कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक पार्टियां भारत में संवैधानिक सुधारों का सम्मान करेंगी तथा वह सीमित राजनैतिक पैकेज काफी होगा। परंतु जो अतिवादी होंगे वह प्रतिक्रिया स्वरूप इसका विरोध अवश्य करेंगे। इन सब हालातों के चलते गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935 को इस परिप्रेक्ष्य में देखना ही तर्कसंगत होगा।

प्रावधान

1. संघीय कार्यकारिणी

द्वैध शासन को प्रांतों से समाप्त कर केंद्र में लागू कर दिया गया तथा विदेशी मामले, रक्षा एवं जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन गवर्नर जनरल तथा सलाहकारों (तीन से अधिक नहीं) को सौंपा गया। अन्य संघीय (केंद्रीय) मामले गवर्नर-जनरल तथा मंत्रिपरिषद (10 से अधिक नहीं) के द्वारा प्रशासित किए जाने थे।

परंतु ये परिषद संघीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी होगी;

अन्य मामले जैसे शांति, भारत की सुरक्षा इत्यादि पर गवर्नर जनरल को विशेष जिम्मेदारी या अधिकार प्रदान किया गया कि वह मंत्रिपरिषद की सलाह मानने या अस्वीकार करने के लिये पूर्ण स्वतंत्र होगा।

2. संघीय विधायिका

इसके दो सदन होंगे :

1. राज्य परिषद (उच्च सदन)
2. संघीय असेंबली (निचला सदन) जैसे गर्वनमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में था।
    1. राज्य परिषद एक स्थायी सदन था, जिसके 1/3 सदस्य हर तीन वर्ष बाद निर्वाचित किए जाएंगे, कुल 156 सदस्य ब्रिटिश भारत से निर्वाचित होंगे तथा 104 सदस्य देशी रियासतों के मनोनीत सदस्य होंगे।
    2. संघीय असेंबली में ब्रिटिश भारत से कुल 250 प्रतिनिधि होंगे, जिनका कार्यकाल 5 वर्ष का होगा तथा 125 सदस्य देशी रियासतों के होंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चयन प्रांतीय विधायिकी असेंबलियों से आनुपातिक चयन प्रणाली से एकल मत प्रक्रिया द्वारा किया जायेगा, यह चुनाव अप्रत्यक्ष होगा। इसी प्रकार रजवाड़ों के सदस्य चयनित न होकर केवल मनोनीत प्रतिनिधि ही होंगे तथा यह प्रावधान भी किया गया कि रक्षा तथा वैदेशक मामलों पर संघीय असेंबलियों का कोई अधिकार नहीं होगा।

आलोचना

1. उच्च सदन के लिए तो प्रत्यक्ष चुनाव की व्यवस्था की गई थी परंतु निचले सदन में नवलोकतांत्रिक प्रक्रिया के विपरीत अप्रत्यक्ष चुनाव का ही प्रावधान किया गया था।
2. कुछ संवेदनशील मामलों, जैसे—शाही परिवार, ब्रिटिश प्रभुसत्ता, सेना इत्यादि मामलों को संघीय कार्यकारिणी, विधायिका से अलग रखा गया था जिस पर इनका अधिकार न के बराबर था तथा अन्य संवेदनशील मुद्दों पर कोई कानून या प्रस्ताव पेश करने से पहले गवर्नर-जनरल की अनुमति लेना आवश्यक था।

3. अखिल भारतीय संघ

एक अखिल भारतीय संघ की प्रस्तावना का भी प्रावधान था, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा रजवाड़ों का एक संघ होगा। ब्रिटिश भारत के सभी प्रांतों का इसमें शामिल होना अनिवार्य बना दिया गया था। परंतु रजवाड़ों को इसमें शामिल होने का स्वैच्छिक अधिकार दिया गया तथा यह भी जोड़ दिया गया कि यह तभी संभव होगा जब लगभग 50 प्रतिशत रजवाड़े इसमें शामिल होने को सहमत हों।

4. स्वायत्त प्रांतीय कार्यकारिणी

प्रांतों का प्रशासन मंत्रिपरिषद द्वारा चलाया जाएगा जिसमें प्रधानमंत्री, गवर्नर द्वारा प्रांतीय चुने हुए सदस्यों में से चुना जाएगा। गवर्नर को काफी अधिक शक्ति प्रदान की गई थी। मध्य प्रांत तथा सिंध के लिए वह मंत्रिपरिषद की सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था। इसी प्रकार अगर गवर्नर को यह लगे कि मंत्रिपरिषद प्रावधानों के अनुसार शासन नहीं कर पा रही है तो वह कानूनी उद्घोषणा के आधार पर प्रांतों का शासन छः महीने के लिए अपने अधिकार में ले सकता था।

5. प्रांतीय विधायिका

इसके सदस्यों का चुनाव लोगों द्वारा सीधे किया जाना था। दो विधायिका—लेजिस्लेटिव कौंसिल तथा

लेजिस्लेटिव असेम्बली छः प्रांतो में शुरू की गई। यह थे—मद्रास, बंबई, बंगाल, उ.प्र., बिहार तथा आसाम। लेजिस्लेटिव कौंसिल या विधान परिषद के कुछ सदस्यों को गवर्नर द्वारा मनोनीत किया जाने का प्रावधान था। इन विधान मंडलों में सीटों का बंटवारा इस प्रकार से था:

बंगाल	–	250
संयुक्त प्रांत	–	228
मद्रास	–	215
बंबई	–	175
पंजाब	–	175
बिहार	–	192
मध्य प्रांत	–	112
उड़ीसा	–	60
सिंध	–	60
उ.प. सीमांत प्रांत	–	50

इस स्थिति में पृथक निर्वाचक मंडल यथावत रहे तथा पूना-समझोते की शर्तों अनुसार दलित जातियों या डिप्रेस क्लासेस को आम सीटों में आरक्षण दिया गया। सरकार का यह कहना कि प्रांतों को सिर्फ अधिक स्वायतत्ता प्रदान ही नहीं की गई, उन्हें अधिक स्वतंत्र भी बनाया गया है, बिलकुल बेमानी साबित हुई क्योंकि गवर्नर, जो केंद्र का प्रतिनिधि था, के हाथों में वास्तविक सत्ता थी तथा वह विशेष शक्तियों का उपयोग वोटों के द्वारा कर सकता था। वह निम्न प्रशासनिक मसलों पर निर्णय ले सकता था:-

1. अल्पसंख्यकों से जुड़े सभी मामले।
2. सिविल सेवाओं अधिकारियों में अधिकार।
3. कानून की स्थिति।
4. ब्रिटिश व्यापारिक हित।

गवर्नर को प्रांतों का शासन अपने हाथ में लेने का अधिकार तथा अनिश्चित समय तक उसे चलाने का भी पूर्ण अधिकार दिया गया।

6. संघीय न्यायालय

एक संघीय न्यायालय की स्थापना, जिसके पास मूल तथा अपील करने का अधिकार था साथ ही संविधान की व्याख्या करने का अधिकार इस न्यायालय के पास था, पर वास्तविक नियंत्रण किसी अपील को लेकर लंदन की प्रिवी कौंसिल के पास रखा गया।

7. सेक्रेटरी ऑफ स्टेट या भारत मंत्री

सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के लिए कुछ सलाहकार नियुक्त किए गए, जिनकी सलाह लेना या ना देना भारत मंत्री पर निर्भर था। भारतीय कौंसिल को पहले ही भारतीय विरोध के चलते समाप्त किया जा चुका था।

ब्रिटिश सरकार का एक्ट लाने का मुख्य उद्देश्य था भारतीय नेतृत्व को कमजोर करना तथा भारतीय राष्ट्रवाद में विभाजन करना। इसमें वह कुछ हद तक सफल भी रहा, जिसका प्रभाव कांग्रेस सरकारों (1937) के निर्माण के समय दिखाई दिया था परंतु इस एक्ट ने 1946-47 की संविधान सभा के सदस्यों को भारत संविधान-निर्माण के समय काफी प्रभावित किया था।

कांग्रेस-शासित सरकारें (1937-39)

1935 के अधिनियम की व्यवस्था पर आधारित प्रांतीय असेंबलियों के चुनाव 1937 में संपन्न हुए। इसमें कांग्रेस, हिंदू महासभा तथा मुस्लिम लीग ने हिस्सा लिया। कांग्रेस को इन चुनावों में अपेक्षाकृत काफी

सफलता प्राप्त हुई। कुल 1585 प्रांतीय असेंबली सीटों में से कांग्रेस ने 711 सीटें जीतीं। मद्रास, उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रांत तथा यू.पी. में पूर्ण बहुमत हासिल किया और बंबई में लगभग बहुमत के करीब पहुंची। मुस्लिम लीग और हिंदु महासभा ने इन चुनावों में खराब प्रदर्शन किया। दोनों का यह कथन कि वह हिंदु और मुसलमानों के अकेले प्रतिनिधि हैं, पूरी तरह से असत्य सिद्ध हुआ। मुस्लिम लीग को तो मुस्लिम सुरक्षित सीटों पर करारी हार का सामना करना पड़ा।

सबसे बड़े मुस्लिम जनसंख्या वाले प्रदेशों—पंजाब व बंगाल में क्षेत्रीय पार्टियों, पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी तथा बंगाल में कृषक प्रजापार्टी ने इन चुनावों में सफलता प्राप्त की, जिसने यह दिखा दिया कि मुस्लिम लीग का प्रभाव केवल पढ़े लिखे वर्ग में हैं और आम जन क्षेत्रीय पार्टियों को महत्व देते हैं। इन चुनावों में अनेक पूंजीपतियों, जैसे—बिरला, टाटा, डालमिया ने चुनावों में धन दिया परंतु कांग्रेस का स्थान आमजनों में गांधी जी के आने के बाद काफी बढ़ गया था परंतु यह बड़ी अनोखी बात थी कि गांधी जी ने इन चुनावों में किसी भी सभा में चुनाव प्रचार नहीं किया तथा न ही कांग्रेस के समर्थन में भाषण दिया। परंतु नेहरू ने 80,000 किलोमीटर की यात्रा करते हुए पांच महीनों में दस लाख लोगों को संबोधित किया।

चुनावों में जनता का संदेश साफ था कि वो प्रांतों में कांग्रेस का शासन देखने चाहते थे और दक्षिणपंथी नेता भी सरकार में आना चाहते थे। नेहरू, सुभाष बोस, समाजवादी तथा साम्यवादी भी सरकार बनाने के पक्ष में थे। नेहरू ने यह तर्क दिया कि इस समय सरकारें बना कर, जिनके पास सीमित शक्ति है, हम सम्राज्यवादी ताकतों को लोगों का शोषण करने का और उन्हें कुचलने का साथ देने का आरोप लगेगा, इसलिए पंडित नेहरू ने अपने भाषण में यह उद्‌गार व्यक्त किए कि सरकार बनाकर कांग्रेस साम्राज्यवाद के सामने आत्मसमर्पण कर देगी तथा शक्तियों को लेकर कांग्रेस लोकतांत्रिक उधेड़बुने में फंस जाएगी तथा जिससे वह अहम मुद्दों को भुलाकर, जैसे आजादी और गरीबी उन्मूलन को छोड़कर व्यर्थ में समय नष्ट करेगी। अगर ऐसा हुआ तो कांग्रेस गहरी खाई में गिर जाएगी जिससे निकलना मुश्किल होगा।

1937 में ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में सरकार को बनाने के लिए सरकार के सामने मांग रखी कि प्रांतों में गवर्नर अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे परंतु गवर्नर जनरल लिनलिथगो ने ऐसा वादा करने से इंकार कर दिया परंतु कांग्रेस फिर भी तैयार हुई। गांधीजी इसके पक्ष में नहीं थे, परंतु वह एक अवसर जरूर देना चाहते थे। इस तरह 1937 जुलाई में सरकारें बनीं। पहले यू.पी., सी.पी. बिहार, उड़ीसा, बंबई तथा मद्रास में, बाद में असम और उत्तर सीमा प्रांत में बनी।

इस तरह अनेकों वर्षों के जन-आंदोलन से कांग्रेसी नेताओं को विधान सभा तथा सचिवालय में काम करने का मौका मिला। सरकारी भवनों पर नया झंडा था तथा असेंबलियों में नया नारा वंदेमातरम्। नेता पहली बार सत्ता की शक्ति का प्रयोग कर रहे थे। जनता लोकतंत्र को उत्साह से देख रही थी। पूरे देश में उत्साह व जोश था। नेहरू जी ने एक कथन में कहा—लोग भारी संख्या में सचिवालय में आएं, अपने नेताओं का बैठे देखें और वापिस जायें।

कांग्रेस मंत्रियों ने सकारात्मक कार्य किया, पब्लिक सेफ्टी बिल समाप्त किया गया। किताबों, पत्रिकाएं, हिंदुस्तान सेवादल तथा युवादल से प्रतिबंध उठा लिया गया परंतु कम्युनिस्ट पार्टी पर लगा प्रतिबंध समाप्त नहीं किया जा सका क्योंकि इसे केंद्रीय सरकार ने लागू किया था। कम्युनिस्टों को कांग्रेस शासित प्रांतों में काम करने का काफी मौका मिला। अनेक राजनैतिक बंदियों को छोड़ा गया। इसमें काकोरी रेल कांड के बंदी भी शामिल थे। परंतु जब गवर्नर ने आदेश को नहीं माना तो मंत्रियों ने इस्तीफे दिए। तब गवर्नर ने उनकी बात मानी। कांग्रेस सरकार ने अनेक जनकल्याण के कार्यक्रम भी चलाए, जैसे—कुछ क्षेत्रों में शराबबंदी लागू की गई। हरिजनों तथा दलित जातियों के लिए कानून पास किए गए, जिसके द्वारा वह आजादी से कुएं, तालाब, रास्तों, परिवहन, अस्पतालों, शिक्षा संस्थानों, होटलों तथा मंदिरों में पूजा कर सकें। हरिजन विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति की योजना मंजूर की गई तथा इसे बढ़ाया भी गया। सी.आई.डी.

और पुलिस का जनता पर भय कम हुआ क्योंकि अब पुलिस वाले मंत्रियों को सुरक्षा प्रदान करते थे। सी.आई.डी. को राजनीतिक भाषणों की रिपोर्ट करने से मना कर दिया गया।

असफलताएं

कांग्रेस की सफलताओं से ज्यादा इसकी विफलताएं अधिक थीं क्योंकि इसके साथ यह परेशानी थी कि इसको प्रांतों के साथ कार्य करने के साथ-साथ विपक्ष का भी रुख अपनाना पड़ता था। इसको उग्रपंथियों को सुनना पड़ता था और दक्षिणपंथियों को भी शांत करना पड़ता था। कांग्रेस को कार्य करने के लिए पूंजीपतियों तथा मजदूरों, जमींदारों तथा किसानों, उच्च और निम्न जातियों, बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के मध्य बीच का मार्ग अपनाना पड़ता था। कांग्रेस के लिए स्थिति विकट थी। एक ओर उपनिवेशी सरकार ने कम शक्तियां और संसाधन देकर उनके हाथ बांधे हुए थे, जिसके कारण कांग्रेस कोई सैद्धांतिक तथा वैचारिक बदलाव लाने में असफल रही।

कांग्रेस मंत्रियों को सिर्फ ब्रिटिश सरकार से नहीं बल्कि भारतीयों से भी संघर्ष करना पड़ा। बिहार में किसान आंदोलन का संघर्ष कांग्रेस में हुआ, जब किसान सभा में सभी किसानों को जमींदारों की जमीन बलपूर्वक लेने के लिए और लगान न देने के लिए कहा। इस कारण कम्युनिस्टों ने कांग्रेस पर आरोप लगाए कि वह पूंजीवादी या मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व कर रही है। सबसे बड़ी चुनौती मुस्लिम लीग की ओर से आई, जिसने अपने पटना अधिवेशन में कांग्रेस सरकारों को फासीवादी करार दिया। यू.पी. में उनके संबंध कांग्रेस से काफी अच्छे थे। अब धीरे-धीरे बहुत खराब हो गए। कांग्रेस यू.पी. में 228 में से 134 सीटों पर विजय रही थी और उसे देवबंध उलेमा का समर्थन तथा अहरार पार्टी का समर्थन भी प्राप्त किया था। इसके कारण कांग्रेस का उत्साह काफी बढ़ चुका था। इसलिए उसने मुस्लिम लीग के साथ सत्ता में भागीदारी से इंकार कर दिया और नेहरू ने यहां तक कहा कि हम मुस्लिम लीग के किसी भी सदस्य को अपने मंत्रिमंडल में शामिल नहीं करेंगे बल्कि लीग को प्रांतीय पार्टी का विलय कांग्रेस में करना पड़ेगा। आधुनिक भारत के कई इतिहासकारों का यह मानना है यू.पी. का घटनाक्रम काफी नाटकीय था। इसके बाद ही लीग ने वह रास्ता चुना, जिसमें भारत का विभाजन हुआ। इस घटना से पहले मुस्लिम लीग कुछ हजार लोगों की पार्टी थी जिसमें मुख्य रूप से मुस्लिम जमींदार, सेना तथा सिविल सेवा के सदस्य थे। यू.पी. के घटनाक्रम के बाद लीग ने क्षुब्ध होकर पार्टी में नई जान डाली और अकेले यू.पी. में एक लाख से अधिक लोगों को पार्टी का सदस्य बनाकर स्थिति मजबूत की और जिन्ना ने कांग्रेस सरकारों की असफलताओं तथा सांप्रदायिक दंगों को न रोक पाने की असमर्थता को मुद्दा बनाया। 1938 तक कांग्रेस में बहुत-से सदस्य हिंदू महासभा, गौरक्षणी सभा तथा उर्दू विरोधी मंच इत्यादि मुस्लिम विरोधी मंचों के सदस्य भी थे। कांग्रेस पार्टी के बड़े नेताओं के धर्मनिरपेक्ष होने का कोई संदेह नहीं था परंतु मध्य और निचले स्तर के नेताओं के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता था। यह वह समय था जब पढ़ा-लिखा मुस्लिम वर्ग कांग्रेस को छोड़ मुस्लिम लीग की तरफ जा रहा था और कांग्रेस का मुस्लिम जन-संबंधी कार्यक्रम मात्र कागजों पर ही चल रहा था और मुस्लिम लीग अपना सामाजिक विस्तार कर रही थी और इसी के साथ-साथ क्षेत्रीय मुस्लिम पार्टियां जैसे—पंजाब में सिंकदर हयात खान की यूनियनिस्ट पार्टी, बंगाल में फजलुल हक की कृषक प्रजा पार्टी इत्यादि। यह बड़े आश्चर्य का विषय था। मुसलमानों से जुड़े बिना किसी प्रमुख मुद्दे को उठाना, जैसे—उनका पिछड़ापन, बेरोजगारी, अनपढ़ता तथा स्त्री, पुरुष इत्यादि के बिना भी मुस्लिम लीग मुसलमानों की अकेली आवाज बन गयी। लीग के नेता कुरान और इस्लाम की बात तो करते थे परंतु अपने जीवन में उन्होंने इस्लाम तथा इसकी अच्छाईयों का कभी पालन नहीं किया। जब कांग्रेस सरकारों ने सताईस महीने के कार्यकाल के बाद जुलाई 1937 से अक्तूबर 1939 को त्यागपत्र दिया तो मुस्लिम लीग ने हर्ष का दिन मनाया (कांग्रेस ने द्वितीय विश्व युद्ध में भारत को शामिल करने के विरोध में त्यागपत्र दिया था)। इतनी सारी कमियों के चलते हुए मुस्लिम लीग राजनीति में ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई, इसमें किसे दोषी माना जाएगा।

पाकिस्तान आंदोलन

पकिस्तान शब्द की रचना कैंब्रिज विश्वविद्यालय के मुस्लिम छात्र चौधरी रहमत अली ने 1930 में की, जिसमें पंजाब, अफगान, कश्मीर, सिंध तथा बलोचिस्तान शामिल थे। वह चाहते थे मुस्लिम बहुल जनसंख्या वाला पश्चिम क्षेत्र एक अलग मुस्लिम राष्ट्र बने। महत्वपूर्ण मुस्लिम नेताओं ने तथा स्वयं जिन्ना ने इसका विरोध किया। 1930 के मध्य तक जिन्ना की पहचान एक राष्ट्रवादी तथा धर्मनिरपेक्ष नेता के रूप में थी। सरोजनी नायडू ने उन्हें 'हिन्दू मुस्लिम एकता का दूत' भी कहा था।

पाकिस्तान आंदोलन का मुख्य आधार था द्वि राष्ट्र सिद्धांत, जिसका यह कथन था कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं। इनकी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहचान अलग-अलग ही नहीं वरन् उसमें टकराव भी है। दो राष्ट्र विचारधारा को मानने वाले यह तर्क देते थे कि पहचान बचाने के लिए हर एक को अलग सार्वभौमिक राष्ट्र का दर्जा दे देना चाहिए। कुछ इतिहासकार सर सैयद् मोहम्मद इकबाल (महान फारसी-उर्दू शासन) तथा वी.डी. सावरकर (हिंदू महासभा के नेता) को द्वि राष्ट्र सिद्धांत का जनक मानते हैं। किसी एक व्यक्ति विशेष को इस विचारधारा का प्रतिनिधि मानना गलत है। न तो सर सैयद और न ही इकबाल इसके लिए उत्तरदायी थे। मुस्लिम लीग की राजनीति 1937 तक मुसलमानों के लिए कुछ अधिकार तथा कुछ प्रदेशों के ही इर्द-गिर्द घूमती रही। पाकिस्तान आंदोलन की वास्तविक शुरुआत के लिए 1931 के चुनावों के बाद के राजनीतिक हालत अधिक महत्वपूर्ण थे।

1938 तक कांग्रेस में हिंदू महासभा तथा मुस्लिम लीग के सदस्य बिना किसी परेशानी के शामिल हो सकते थे। मौलाना आजाद ने यह महसूस किया कि नेहरू रिपोर्ट तथा जिन्ना के 14 सूत्रीय कार्यक्रम की प्रतिक्रियास्वरूप मुस्लिम लीग के सदस्यों ने कांग्रेस की सभाओं में आना लगभग बंद कर दिया था, पर शिया लोगों ने अभी भी आना जारी रखा था। कांग्रेस का लीग के साथ मिलकर यू.पी. में सरकार न बना पाना अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण रहा क्योंकि इसके बाद लीग ने कांग्रेस सरकारों के शासन के विरुद्ध दुष्प्रचार चलाया। लगभग 27 महीने के बाद जब 1939 में इन प्रांतीय सरकारों ने त्यागपत्र दिया तो लीग ने खुशी जाहिर करते हुए विजय-दिवस मनाया। इसमें कोई संदेह नहीं कि मुस्लिम लीग ने जानबूझकर इसे राजनीतिक रंग दिया, परंतु दंगों को न रोक पाने के कारण पढ़ा-लिखा मुस्लिम वर्ग कांग्रेस को छोड़कर मुस्लिम लीग के पास चला गया, जिससे मुस्लिम लीग को एक नैतिक बल मिला। आसफ अली जैसे उदारवादी मुस्लिम नेता ने भी इस दर्द को महसूस किया। एक केस के सिलसिले में वह इंदौर में जब पैरवी करने गए तो उन्होंने यह पाया कि मुसलमानों के विरुद्ध बिना कारण कार्रवाई की गई थी जिससे वह काफी डरे तथा सहमे हुए थे और गिरफ्तारी और डराने का सिलसिला काफी एकतरफा था, जिसके पीछे हिंदू महासभाईयों तथा आर्य-समाजियों का हाथ था। इसके साथ ही आसफ अली ने यह पाया कि गृह मंत्रालय का न. 16, 10 मार्च, 1927 का आदेश भी भेदभावपूर्ण था, जिसमें ट्रिब्यूनल में दो हिंदू तथा एक मुस्लिम सदस्य को शामिल किया गया था और यह भी कहा गया था कि अंतिम फैसला बहुसंख्यक तर्क के आधार पर किया जाएगा (आसफ अली पेपर, 1621-1638 संख्या 9, प्रेम चंद आर्कइव्स व लिटरेटेरी सेंटर, जामिया मिलिया इस्लामिया)।

सन 1939 में मुस्लिम लीग ने अलीगढ़ योजना (जफर-उल-हसन तथा हुसैन कादरी) का अध्ययन किया, जिसने भारत को चार स्वतंत्र राज्यों-हिंदुस्तान, पाकिस्तान, बंगाल तथा हैदराबाद में बांटने या विभाजन करने की बात की गई थी। यूनीनिस्ट पार्टी के नेता सिंकदर हयात खान ने सात राज्य बनाने का प्रस्ताव दिया था, जो स्वशासी होंगे तथा केंद्र को केवल रक्षा, विदेशी मामले, कस्टम तथा मुद्रा के अधिकार देने का प्रस्ताव था। स्वाभाविक था, ब्रिटिश सरकार का अंदरूनी समर्थन ऐसे प्रस्तावों को था। 23 मार्च, 1940 को ऐतिहासिक क्षण आया जब मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव को सिंकदर हयात खान ने पेश किया, फजलुल हक ने समर्थन दिया तथा खलिक-उल-जमा ने अनुमोदित किया। इस प्रस्ताव की भाषा काफी संयत थी। इसमें विभाजन शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था बल्कि यह कहा गया था कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों—पश्चिमी, उत्तर तथा पूर्वी उत्तर भारत को स्वायत्तता प्रदान की

जाये। यह प्रस्ताव दुर्बल केंद्रीय सरकार का भी समर्थन कर रहा था। अपनी पुस्तक 'दि सोल स्पोक्समैन' में पाकिस्तानी इतिहासकार आयशा जलाल ने इस तथ्य का जिक्र किया है कि जिन्ना कांग्रेस से अधिक से अधिक राजनीतिक (मुसलमानों) स्वायत्तता चाहते थे तथा पाकिस्तान की मांग एक प्रकार से मुसलमानों के लिए भारत में एक राजनीतिक हित का समझौता था। तेज बहादुर सप्रू ने जिन्ना के बारे में यह टिप्पणी की थी कि "जिन्ना ओलिवर टविस्ट की तरह है। उसे अगर कुछ भी दोगे तो वह और मांगेगा (तेज बहादुर सप्रू पेपर्स-12-1)।"

ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस समान रूप से मुस्लिम लीग की लोकप्रियता के लिए जिम्मेदार थे और वह भारत को विभाजन की ओर ले जा रही थी। 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव ने पिछले दरवाजे से चतुराई से पाकिस्तान की मांग का अनुमोदन कर ही दिया था। जब उसने प्रांतीय स्वशासन का प्रस्ताव पेश किया था जिसके अनुसार निचला सदन संविधान-सभा बनाने के लिए सदस्यों का चुनाव द्वारा नामांकन करेगा, जो जनसंख्या के आधार पर होगा तथा ब्रिटिश सरकार इस संविधान को मान लेगी, परंतु अगर कोई प्रांत इस संविधान को नहीं मानेगा तो उसे अलग होकर अपना संविधान स्वयं तैयार करने का अधिकार होगा। जुलाई, 1944 में गांधी जी ने भी मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को स्वायत्तता के अधिकार की मांग का समर्थन किया था (सुचेता महाजन, इंडिपेंडेंस एंड पार्टीशन-pp-208, सेज प्रकाशन, 2000)। राजगोपालाचारी ने, राजाजी योजना का अनुमोदन किया था, जिससे उन्होंने भारत के उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में युद्ध पश्चात, जनमत संग्रह करने का सुझाव भी दिया तथा यह भी कहा कि लीग अंतरिम सरकार में शामिल होकर भारत से अलग होने के प्रस्ताव पर विचार करेगी, परंतु जिन्ना ने यह कहा कि मुसलमानों के प्रांतों के बारे में निर्णय सिर्फ मुसलमान ही करेंगे तथा केवल जिलों को लेकर ही पाकिस्तान नहीं बनेगा। उसने यह भी विचार व्यक्त किया कि विभाजन का फैसला आजादी से पहले हो जाना चाहिए। इसी बात को लेकर लार्ड वेवल ने शिमला कांग्रेस बुलाई, जिसने मुस्लिम लीग की स्थिति को और अधिक मजबूत कर दिया।

इस योजना की असफलता ने जिन्ना को मुसलमानों के लिए अकेली आवाज उठाने वाला नेता बना दिया। उनको लोकप्रियता की नई ऊंचाई तक पहुंचा दिया। 1945-46 के केंद्रीय तथा प्रांतीय असेंबलियों के चुनावों ने मुस्लिम लीग को अपने आप संगठित करने का सुअवसर दिया इससे पहले उनकी संस्थागत राजनीति काफी कमजोर थी तथा सामाजिक आधार भी विस्तृत नहीं था पर 1945 में लीग ने गांवों में प्रचार आरंभ किया तथा किसानों में अपनी पैठ बनानी प्रारंभ की। जमींदारों तथा किसानों के मध्य जो संघर्ष उन्हें लीग ने सांप्रदायिक रंग देना प्रारंभ किया-उन्होंने पंजाब तथा बंगाल के मुस्लिम किसानों से यह वायदा किया कि पाकिस्तान बन जाने के बाद हिंदु जमींदारों तथा व्यापरियों का शोषण स्वतः ही समाप्त हो जायेगा तथा छोटे मुसलमान व्यापारियों को यह कहकर साथ मिलाया कि पाकिस्तान में उनकी उन्नति के अधिक अवसर होंगे। इसी प्रकार पढ़े-लिखे मुस्लिम मध्यम वर्ग को उन्होंने यह वायदा दिया कि पाकिस्तान में आगे बढ़ने के अवसर अधिक होंगे तथा उनकी इज्जत, सम्मान, तथा धर्म हिंदुओं से सुरक्षित रहेगा।

अप्रैल 1945 में फेडेरेशन ऑफ मुस्लिम चेंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री बना और यह योजना भी बनी कि एक मुस्लिम बैंक तथा हवाई जहाज सेवा भी खोली जाएगी, जो युद्ध के पश्चात अपना कार्य शुरू करेंगी। जिन्ना ने इन सभी संस्थाओं को अपना समर्थन दिया। लीग ने चुनावों में धार्मिक नेताओं (उलेमाओं) का प्रचार में सहारा लिया तथा यह प्रचार किसी कि मुस्लिम लीग के लिए वोट करना कुरान को वोट डालने जैसा होगा तथा कांग्रेस को वोट करना 'गीता' को वोट करने जैसा होगा, का जमकर प्रचार किया। सांप्रदायवादी तथा उदारवादी मुसलमानों को गद्दार कहा गया तथा उन्हें जान से मारने तक की धमकियां भी दी गई। शाह ओजिर मोमिनी, एक प्रत्याशी जो इस्लामपुर, पूर्णिया की सीट से चुनाव लड़ रहे थे, वह इतने अधिक भयभीत हुए कि वह लीगियों की मार से बचने के लिए लोगों के सामने आने से कतराने लगे। इस कारण वह चुनाव हार गए (राजेन्द्र प्रसाद पेपर्स -9-R/45-46, Col. I)।

वेवेल योजना

गवर्नर जनरल तथा वाइसराय लार्ड वेवल ने भारत में राजनीतिक ठहराव को समाप्त करने के लिए 25 जून 1945 को सभी राजनीतिक पर्टियों की एक सभा बुलाई। राजनीतिक माहौल को संयत बनाने के लिए उन्होंने गांधी जी समेत अनेक राजनीतिक बंदियों की रिहाई की। इस सभा की अध्यक्षता लार्ड वेवल ने की, जिसमें कांग्रेस लीग, सिखों, दलित जातियों तथा यूरोपीय प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया। इस योजना के निम्न प्रस्ताव थे:

1. गवर्नर जनरल की कार्यकारी कौंसिल का गठन होगा जिसमें गवर्नर-जनरल व कमांडर-इन-चीफ को छोड़कर सभी सदस्य भारतीय होंगे।
2. सभी वैदेशिक मामले भारतीयों को सौंपे जाएंगे।
3. हिंदुओं में उच्च जातियों (दलितों को छोड़कर) तथा मुसलमानों को समान रूप से प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।
4. गवर्नर जनरल के पास वीटो अधिकार होगा परंतु वह इस अधिकार का प्रयोग केवल मंत्रियों की सलाह अनुसार करेगा।
5. अनेक पार्टियों के प्रतिनिधि एक सूची पर विचार करेंगे, जिसके आधार पर वाइसराय सदस्यों का कौंसिल में नामांकन करेंगे।
6. यह नई कौंसिल संविधान निर्माण के लिए तरीके तैयार करेगी।

मुस्लिम लीग ने इस बात पर जोर दिया कि इस कौंसिल के सभी मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के ही होने चाहिए। इसमें किसी क्षेत्रीय पार्टी तथा कांग्रेस का मुस्लिम सदस्य न हो। परंतु कांग्रेस इस स्थिति में हिंदुओं की पार्टी होने का इल्जाम नहीं लेना चाहती थी। उसने जिन्ना के इस प्रस्ताव का विरोध किया हालांकि वाईसराय चाहते थे कि खिज्र हयात खान जो मुस्लिम लीग के नेता नहीं थे, को इस कौंसिल में मनोनीत किया जाए परंतु कोई नतीजा न निकलने पर वाइसराय ने 14, जुलाई 1945 को इस सभा की समाप्ति की घोषणा की।

मुस्लिम लीग ने यह प्रचार भी किया कि अगर मुसलमान लीग को वोट नहीं डालेगे तो वह धर्म भ्रष्ट हो जाएंगे, उनकी शादियां बेमानी हो जाएंगी तथा उनके मृत लोगों को कब्रगाह में भी जगह नहीं दी जाएगी।

मोहम्मद युनुस, जो सीमा प्रांत के कांग्रेस नेता थे, ने अपने संस्मरण में यह लिखा कि लीग ने प्रचार के लिए 'खूनी-मुशायरा' का प्रबंध किया तथा इस्लाम खतरे में हैं जैसे नारे का प्रयोग किया। यह नारा बाद में लीग का पंसदीदा नारा बन गया जिससे कि उसने धार्मिक भावनाओं को भड़का कर काफी लाभ प्राप्त किया।

इस प्रकार परिणाम लीग के पक्ष में रहे। केंद्रीय असेंबली में लीग ने सभी मुस्लिम सीटों पर विजय प्राप्त की और 89-1 से अधिक मुस्लिम वोट प्राप्त किये। इसी प्रकार अखिल भारतीय प्रांतीय असेंबलियों में लीग ने 492 मुस्लिम सीटों में से 428 मुस्लिम सीटों पर कब्जा किया जो एक बहुत शानदार प्रदर्शन था। आयशा जलाल ने लीग की सफलता के लिए अलग विचार प्रकट किया है। जिन्ना की 1946 चुनावी सफलता वास्तव में ब्रिटिश सरकार की उस अनिच्छा का परिणाम थी, जिसमें मुस्लिम मतदाताओं को पाकिस्तान के बारे में भ्रम बना हुआ था तथा कांग्रेस भी उन मुस्लिम प्रांतों में बेहतर तालमेल बनाने में नाकामयाब रही जहां पर मुस्लिम लीग का प्रभाव अधिक नहीं था। वह आगे कहती हैं कि छोटे मुस्लिम

नेताओं को प्रोत्साहित कर लीग ने हर प्रकार से सफलता अर्जित की।

मुस्लिम लीग को चुनावों में मिली विजयश्री से संतोष तो हुआ परंतु पाकिस्तान का सपना अभी अधूरा था, जिसे ब्रिटिश सरकार की सहायता के बिना बनाना संभव नहीं था। सरकार ने सन 1946 में तीन सदस्यीय केबिनेट मिशन को भारत भेजा, जिसने मई, 1946 को प्रस्ताव पेश किया, जिसमें उसने पाकिस्तान का प्रस्ताव तो नहीं किया परंतु तीन-पक्षीय-संघीय ढांचा प्रस्तुत कर मुस्लिम-बाहुल्य प्रांतों को लगभग स्वायत्तता प्रदान कर दी। पाकिस्तान की संभावना को नकार कर मिशन ने कांग्रेस को कुछ राहत अवश्य दी परंतु यह थोड़ी देर के लिए ही थी क्योंकि केबिनेट मिशन योजना में प्रस्तावित वर्गीकरण (प्रांतीय) पाकिस्तान की संभावना को जीवित रखे हुए था। अगस्त, 1946 में लीग काफी आक्रामक मुद्रा में आ चुकी थी। 16 अगस्त, डायरेक्ट एक्शन या सीधी कार्रवाई दिवस को सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए जो शीघ्र ही कलकत्ता, बिहार तथा पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्रों में फैल गए। बंगाल के मुख्यमंत्री मुस्लिम थे तथा बिहार के हिंदु। वह दंगों को रोकने की बिना किसी कोशिश के हजारों लोगों के मरते हुए देखते रहे। गांधी जी ने तुरंत इस पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की। हालात गंभीर थे उन्होंने कहा, हम अभी गृह युद्ध में तो नहीं फंसे परंतु अब हम उस ओर बढ़ चुके हैं, परंतु उन्होंने स्थिति को देखते हुए चुप्पी साध लेना बेहतर समझा तथा इस आशय की टिप्पणी की ''शांत रहना ही हमें सबसे अच्छा संचार माध्यम लगता है क्योंकि शांति में ही सत्य है,'' (प्रार्थना सभा, नई दिल्ली, अगस्त 28, 1946, MGCW Vol-85,pp-22)।

जिन्ना ने हिंसा की भर्त्सना की तथा कहा कि अगर मालूम हुआ तो हम लीग के सदस्यों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई अवश्य करेंगे, जिन्होंने सरकारी आज्ञा का उल्लंघन किया है।

आयशा जलाल का कहना है कि हिंसा किसी मुस्लिम लीग सदस्य ने शुरू नहीं कि बल्कि इसकी शुरूआत एक धार्मिक नेता के बयान के बाद ही शुरू हुई। जिन्ना अब हिंसा पर काबू नहीं पा सकते थे क्योंकि अब वह नियंत्रण के बाहर थी तथा भारत विभाजन ही केवल समस्या का हल था क्योंकि लगभग गृह युद्ध की स्थिति बन चुकी थी।

मुसलमान अब हिंदु नेताओं में विश्वास खो चुके थे तथा महात्मा गांधी भी इस तथ्य को भलीभांति जानते थे कि वह भी मुसलमानों में लोकप्रिय नहीं रहे थे। अब मुसलमान उन्हें अपना नंबर एक दुश्मन मानने लगे थे, (Bose; my day with Gandhi; pp-140 & 152)। अब मुसलमान गांधी जी पर आरोप लगा रहे थे कि क्यों उन्होंने दौरा करने के लिए नोआखाली को ही चुना जहां पर हिंदुओं पर अत्याचार हुए थे। वह बिहार भी तो जा सकते थे, जहां मुसलमनों को बहुत बुरी तरह से मारा गया था, इसलिए वह अब हिंदू हितेषी हो गए हैं।

मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाने की तरफ एक कदम ओर बढ़ी, जब केबिनेट मिशन की योजनानुसार 2 सितंबर, 1946 को अंतरिम सरकार का गठन किया गया। लीग शुरुआत में सरकार में शामिल होने को तैयार थी बशर्ते कि जिन्ना उसके अध्यक्ष बनें। गांधी जी ने कांग्रेस नेताओं को राजी करने की कोशिश की कि वह जिन्ना को प्रधानमंत्री मान लें, जिससे वह अधिक विश्वस्त हो जाएंगे तथा विभाजन की हठ छोड़ देंगे। बी.आर. नंदा ने अपनी पुस्तक Mahatma Gandhi- A biography में इस तथ्य का खुलासा किया है, कि गांधी जी द्वारा यह एक महान, सुअवसर था जो कांग्रेस नेताओं के द्वारा पूरी तरह से खारिज कर दिया गया तथा गांधी जी की भी सलाह को अब कांग्रेस द्वारा अनसुना किया जाने लगा। जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री बने तो लीग ने अंतरिम सरकार का पूर्ण बहिष्कार किया परंतु लार्ड वेवेल के समझाने पर उन्होंने अंतरिम सरकार को माना परंतु सिर्फ पाकिस्तान हासिल करने की उनकी नीति का यह अहम हिस्सा बनी। मुस्लिम लीग के सदस्य गंजफ्फर अली खान जिन्होंने अंतरिम सरकार में स्थान ग्रहण किया, ने यह बयान दिया कि अंतरिम सरकार में शामिल होने का उद्देश्य इतना है कि हम पाकिस्तान लेने के लिए अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर सकें तथा यह हमारी, सीधी कार्रवाई, योजना का ही एक हिस्सा है।

लियाकत अली खान को छोड़कर सभी लीग के सदस्य जो सरकार में शामिल हुए, निचले स्तर के

नेता थे तथा शक्तिशाली व उच्चस्तरीय नेता पाकिस्तान आंदोलन में व्यस्त थे या अंतरिम थे। लीग के सदस्यों का मुख्य उद्देश्य था सरकार के अंदर रहकर असहयोग करना।

कांग्रेस सदस्यों ने अंतरिम सरकार के दौरान महत्वपूर्ण मुद्दों पर बात करने के लिए नीतिगत रूप से ऐसी योजना बनाई थी कि जिससे सभी मसलों पर सहमति बने और गवर्नर जनरल की महत्ता उससे कम हो तथा वह केवल सांकेतिक अध्यक्ष की तरह रहे। परंतु लीग के सदस्यों ने इन बैठको में भाग लेने से इंकार किया और वह लियाकत अली खान की अध्यक्षता में अलग बैठकें करते रहे तथा वाइसराय को उन्होंने जानबूझकर काफी महत्व प्रदान किया।

लियाकत अली खान जो वित्त मंत्री की हैसियत से कार्य कर रहे थे, उन्होंने ऐसा बजट पेश किया जिससे कांग्रेस तथा लीग में काफी संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई। यह बजट पूंजीपति विरोधी तथा अमीर वर्ग विरोधी था, इसमें इन वर्गों पर काफी ज्यादा और भारी-भरकम कर लगाए गए थे। कांग्रेस के लिए यह परेशानी वाली स्थिति थी क्योंकि वह बजट प्रस्तावों का समर्थन तथा विरोध सार्वजनिक रूप से नहीं कर सकती थी। इसलिए नेहरू तथा अन्य कांग्रेस सदस्य पूर्ण रूप से आश्वस्त थे कि अब विभाजन ही एकमात्र रास्ता बचा है। अंतिम काम माउंटबेटन योजना ने जून, 1947 में कर ही दिया।

1945 पश्चात की लहर, आर.आई.एन. विद्रोह तथा तेलगांना विप्लव

रॉयल इंडियन नेवी ने 18 फरवरी, 1946 को इतिहास में अपना नाम दर्ज करवाया, जब सिग्नल की संस्था 'तलवार' में भूख-हड़ताल का आहवान किया गया। ये लोग खराब खाने तथा बदसलूकी के विरोध में विद्रोह या हड़ताल कर रहे थे। 19 फरवरी को यह हड़ताल बंबई के 22 जहाजों में फैल गई। इसी बीच यह अफवाह भी फैली कि आई.एन.एस. 'तलवार' में गोलीबारी हुई है जिससे बंबई की सड़कों पर हिंसक प्रदर्शन हुए। कांग्रेस, लीग तथा कम्युनिस्ट पार्टियों के आम सदस्यों ने तीनों पार्टियों के झंडे एक साथ फहरा दिए।

विद्रोह काफी तेजी से फैला। इसके बाद नेवल सेंट्रल स्ट्राईक कमेटी की स्थापना की गयी, जिसके अध्यक्ष एम.एस. खान थे। इन्होंने अपने लिए समान वेतन तथा पद की मांग की, जो ब्रिटिश सैन्य कर्मियों को दिया जा रहा था। यहां तर्क यह था कि गोरे लोग मांसभोजी हैं, इसलिए उन्हें अधिक वेतन दिया जाता है (मोहम्मद अली पेपरस Vol-5-प्रेमचन्द आरकाइव्ज एंड सेंटर जामिया मिलिया इस्लामिया)। इसके अलावा उनकी अन्य प्रमुख मांगें थीं कि इंडोनेशिया से भारतीय सैनिकों को हटाया जाए तथा आई.एन.ए. के बंदियों को रिहा किया जाए। यह कहना मुश्किल है कि क्या वह राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित थे या फिर लोगों से सहानुभूति प्राप्त करना चाहते थे। परंतु 20 फरवरी को नाविक अपने जहाजों में वापिस आ गए लेकिन रखवालों ने उन्हें रोका, संघर्ष हुआ। अगले ही दिन सेना की गारद और इन सिपाहियों में झड़प हुई, तुरंत ही 78 जहाजों के 20 हजार सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। बंबई के आम नागरिक उनके समर्थन में आगे आए। दुकानदारों ने विद्रोहियों को खाना खिलाया, उनके समर्थन में जनसभाएं हुईं। अनेक स्थानों पर हड़ताल का आहवान किया गया। सड़कों में हिंसा हुई, पुलिस स्टेशनों, बैंकों, ईसाई संस्थानों जैसे वाई.एम.सी.ए. के यूरोपीय लोगों पर हमले हुए। इसके कारण आम जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया। कम्युनिस्ट पार्टी ने आम हड़ताल की घोषणा की, जिसके कारण मजदूर भी इन सैनिकों के समर्थन में आ गए। कराची में भी इस हड़ताल का असर हुआ। वहां के नाविकों ने भी एक के बाद एक जहाजों ने हड़ताल कर दी। इसके कारण पहली बार हिंदूओं और मुसलमानों में एकता देखी गयी, जिसमें अरुणा आसफ अली के इस कथन को सिद्ध किया कि हिंदू-मुसलमानों को सड़कों पर इकट्ठा किया जा सकता है बजाए किसी संविधानिक मामले को लेकर—परंतु गांधी जी ने इस तरह की हिंदू-मुस्लिम एकता को पंसद नहीं किया। क्योंकि वह सड़कों पर इस तरह कि हिंसा के विरुद्ध थे। आर.एन.ए. का विद्रोह कुछ कमजोरियों में या कमी से ग्रसित था क्योंकि यह जन आंदोलन नहीं बन सका जैसा आई.एन. की स्थिति में हुआ था। परंतु स्वतंत्र इतिहास में अपना एक अलग स्थान है, जिसमें ब्रिटिश सरकार को यह जता दिया कि अगर सेना में विद्रोह होता है तो अब भारत में उनके गिने चुने दिन ही बचे

राजाजी फार्मूला तथा देसाई-लियाकत समझौता

सी. राजगोपालाचारी कांग्रेस के वरिष्ठ नेता थे, उन्होंने गांधी जी के समर्थन में मार्च, 1944 में सांप्रदायिक मुद्दे को सुलझाने के लिए एक फार्मूला तैयार किया था परंतु इसकी सफलता के लिए मुस्लिम लीग का सहयोग आवश्यक था। इस फार्मूला के अनुसार :

1. मुस्लिम लीग आजादी की मांग के लिए कांग्रेस का समर्थन करेगी तथा अस्थायी सरकार की स्थापना को लेकर भी उसको समर्थन देगी।
2. मुस्लिम बहुल प्रांतों में जनमत संग्रह द्वारा यह निर्णय लिया जायेगा कि वह भारत के उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी भाग में अलग राज्य बनेंगे या नहीं।
3. भारत विभाजन की स्थिति में रक्षा, संचार तथा अन्य मामलों पर समझौता किया जाएगा।
4. यह तभी लागू रहेंगे जब ब्रिटिश सरकार भारत को पूर्ण सत्ता हस्तांतरण कर देगी।

गांधी जी ने यह विचार भी व्यक्त किए कि राजाजी को लीग के लाहौर प्रस्ताव पर भी यथासंभव तर्क देने चाहिए और उन्हें नया प्रारूप भी देना चाहिए परंतु जिन्ना ने राजाजी पर आरोप लगाया कि उन्होंने प्रस्ताव की शर्तों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया है तथा यह मांग रखी कि केवल मुसलमानों को इन प्रांतों में वोट देने का अधिकार प्रदान किया जाए न कि पूरी जनसंख्या को। गांधी जी ने इस पर अपनी असहमति जतायी कि यह तो द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का अनुमोदन होगा। जिन्ना इस प्रस्ताव से भी नाखुश थे कि केंद्र सरकार से रक्षा, संचार तथा व्यापार संबंधी समझौते इन प्रांतों के लिए मान्य होंगे। वह तो अधिक स्वतंत्रता चाहते थे।

राजगोपालाचारी फार्मूला असफल रहा लेकिन उम्मीद की किरण तब जगी जब भूलाभाई देसाई कांग्रेस नेता, जो केंद्रीय असेंबली के सदस्य थे, ने लीग नेता लियाकत अली खान से मुलाकात की, जो केंद्रीय असेंबली के उप-नेता थे, ने अंतरिम सरकार बनाने के मुद्दे पर सहमति व्यक्त की जो इस प्रकार थी:

1. केंद्रीय विधायिका में कांग्रेस तथा लीग के सदस्यों की संख्या बराबर होगी।
2. अल्पसंख्यकों तथा उनके प्रतिनिधित्व का मामला।
3. कमांडर इन चीफ की स्थिति।

परंतु देसाई-लियाकत वार्ता भी सांप्रदायिक मामला सुलझाने में विफल रही तथा देश विभाजन की ओर बढ़ चला था।

हैं। गांधी जी ने इस विद्रोह का विरोध किया और यह कहा कि हिंसा को छोड़ कर सैनिकों को अपनी नौकरी छोड़ देनी चाहिए। 23 फरवरी को मुहम्मद अली जिन्ना और सरदार पटेल के प्रयासों से इस विद्रोह का अंत हुआ। जवाहरलाल नेहरू ने भी इसका यह कहते विरोध किया कि भारत को अनुशासित सेना की जरूरत है न कि अनुशासनहीन सैनिकों की। यह विडंबना ही है कि आर.आई.एन. को इतिहास में इतनी अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि इतिहासकार नेहरू और गांधी के विरोध में कुछ लिखने से हिचकते रहे हैं। मार्क्सवादी इतिहासकारों ने आर.आई.एन. विद्रोह के इतिहास को काफी अच्छे ढंग से लिखा है तथा आधुनिक भारतीय इतिहास के छात्रों को भेदभावपूर्ण इतिहास पढ़ने को मिला है।

तेलगांना विप्लव (1945-51)

यह आधुनिक भारतीय इतिहास में किसानों का सबसे बड़ा गुरिल्ला छापामार युद्ध था जिसने 30 लाख

लोगों की जनसख्या, 3000 गांवों तथा 16000 वर्ग मील क्षेत्र को प्रभावित किया। यह तीन जिलों— नलगोंडा, वारंगल तथा खम्मम में सबसे अधिक विस्तृत था। इसके साथ-साथ सूर्यपेट तथा हजूरनगर जिले भी इसके प्रभाव में रहे।

तेलगांना क्षेत्र में दो प्रकार की भूमि व्यवस्था थी। पहली खालसा या दीवानी भू-व्यवस्था, दूसरी सर्फ-ए-खास या जागीर। पहली व्यवस्था में किसानों का प्रभुत्व था तथा दूसरी में निजाम, जो वहां का शासक था, का वर्चस्व था। सारा क्षेत्र 6500 गांवों तक 25000 वर्ग मील तक फैला हुआ था (जो हैदराबाद राज्य का तीसरा हिस्सा था)।

यहां पर देशमुख तथा देशपांडे कर संग्रहण का कार्य करते थे, यह उनका पुश्तैनी पेशा था। कई मौकों पर एक ही व्यक्ति महाजन, जमींदार तथा गांव का कर-अधिकारी होता था तथा उसे वेती (बेगारी) लेने का भी अधिकार प्राप्त था। इस क्षेत्र में दलित जाति भी माला तथा माडिगा के किसान इन अधिकारियों को सेवा प्रदान करते थे। परंतु 1940-41 का समय काफी कठिन रहा। जमीन के असली मालिकाना हक वाले किसान मात्र बेगारी करने वाले तथा भूमिहीन किसान ही बनकर रह गए। उनका जीवन और भी संघर्षमय हो गया। क्योंकि युद्ध के कारण महंगाई की मार ने उनकी कमर तोड़ दी। उन्हें दिये जाने वाले वेतन पर किसी तरह की बढ़ौत्तरी नहीं की गई तथा रोजमर्रा की वस्तुएं भी महंगाई के कारण उनकी पहुंच से बाहर हो गईं।

आंध्रा महासभा नामक एक संस्था, जो साम्यवादियों से प्रभावित थी, ने अब इन गरीब किसानों की समस्या के ऊपर ध्यान देना शुरू कर दिया तथा यह संस्था अब अतिवादी तथा प्रतिक्रियावादी बन चुकी थी। इस विप्लव की शुरुआत तब हुई जब एक देशमुख से एक धोबी की जमीन को बचाने के लिए डोडी-कोमारय्या नामक व्यक्ति की हत्या हो गई। यह घटना नलगोंडा के तालुका 'जनगांव' में घटित हुई थी। इसके विरोध में आंदोलन तुरंत ही सूर्यपेट्ट, हजूरनगर, वांरगल तथा खम्मम् में फैल गया। अपने वेग के दौरान 300 से अधिक गांव इस आंदोलन से प्रभावित हुए। किसानों ने स्वयं संचालित ग्राम राज्य की स्थापना की तथा ग्राम पंचायतों की इसमें अग्रणी भूमिका रही। करीब दस लाख एकड़ से अधिक भूमि किसानों में बांटी गई, जो जन-समिति के निरीक्षण में किया गया। ब्याज वसूली की परंपरा का लगभग अंत सा ही कर दिया गया तथा अनेक स्थानों पर ब्याज-दर कम से कमतर कर दी गई। खेती की मजदूरी को भी काफी बढ़ा दिया गया तथा एक मुश्त राशि को मजदूरी भत्ता के रूप में तय कर दिया गया। इसी प्रकार जंगल के जो अफसर निरंकुश थे उन्हें वहां से भगा दिया गया और करीब 18 महीनों तक जन समीतियों ने गांवों का नियंत्रण बहुत अच्छे तरीके से किया।

यह आंदोलन वास्तव में ही हिंसक था परंतु इसको कुचलने के लिए राज्य ने प्रतिहिंसा का जमकर सहारा लिया। निजाम की सेना तथा उसके रज़ाकारों ने पहले, उसके बाद केंद्रीय सरकार तथा हैदराबाद राज्य की सरकार ने जमकर हिंसा का खुला प्रयोग किया। एक गैर-सरकारी अनुमान के अनुसार भारत सरकार ने आंदोलन पर उससे भी अधिक खर्च किया जितना कि उसने 1947-48 के कश्मीर युद्ध पर खर्च किया था। यह तो निश्चित ही था क्योंकि इतनी प्रतिहिंसा के कारण हताहतों की संख्या ज्यादा ही रहती। करीब 4000 से अधिक साम्यवादी तथा किसान मारे गए और करीब-करीब 10000 से अधिक किसानों और साम्यवादी कार्यकर्ताओं को जेलों में डाल दिया गया। अगले 3-4 वर्षों तक अनेकों किसानों तथा साम्यवादी कार्यकर्ताओं को जेल में भरने की कारवाई चलती रही और करीब-करीब 50000 से अधिक लोगों को सैन्य कैंपों तथा पुलिस स्टेशनों में प्रताड़ित किया जाता रहा और यह अनेक महीनों तक जारी रहा। कांग्रेस पार्टी ने अपनी तरफ से आंदोलन चलाने के लिए विनोबा भावे को वहां भूदान आंदोलन शुरू करने का आह्वान दिलवाया परंतु यह सिर्फ एक आदर्श प्रस्तुत करना भर था। कांग्रेस का परम उद्देश्य था किसानों में फैलते साम्यवादी आंदोलन तथा प्रतिक्रियावादी विचारधारा को रोकना। वह किसानों को सांत्वना देने के नाम पर उन्हें इस विचाराधारा से प्रेरित होने से बचाने के लिए प्रयास कर रहे थे।

इस आंदोलन की एक खास बात और थी वर्ग-मित्रता या दोस्ती को लेकर अनेकों मतभेद होना। इस

क्रांतिकारी संघर्ष को लेकर विचारधारा के स्तर पर अनेकों मतभेदों के चलते आंदोलन में बिखराव आना शुरू हो गया परंतु इन कमियों के चलते हुए भी यह आंदोलन किसानों के लिए सफल आंदोलन, चाहे वह सीमित रहा हो, का आदर्श प्रस्तुत कर गया और तेलगांना विप्लव किसान आंदोलन के इतिहास में सबसे सफल साबित हुआ। इसके साथ-साथ तेलगांना विप्लव ने भारत की राजनीतिक सीमाओं का पुनर्निर्धारण करने का भी कार्य किया तथा इस आंदोलन में पहली बार साम्यवादी दल के नेताओं की अलग पहचान बनी क्योंकि वे ही इस आंदोलन की प्रमुख विचारधारा को निर्देशित कर रहे थे।

संवैधानिक समझौता-वार्ता तथा सत्ता का हस्तांतरण

द्वितीय विश्व युद्ध के वर्षों के बाद ब्रिटेन तथा भारत के राजनीतिक घटनाक्रमों में तेजी से बदलाव हुआ तथा ये भारत को धीरे-धीरे राजनीतिक स्वतंत्रता तथा विभाजन की ओर लेकर जा रहे थे। राजनीतिक आंदोलन की परिणति अब धीरे-धीरे अपने परिणाम की ओर बढ़ रही थी तथा आम संदेह तथा अविश्वास भी इसके नकारात्मक पहलू की ओर इशारा कर रहे थे। कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न जो इस भाग में ध्यान देने योग्य होंगे—क्यों ब्रिटिश भारत को छोड़ गए? क्या विभाजन अवश्यभावी था? क्यों कांग्रेस तथा गांधी जी ने विभाजन प्रस्ताव स्वीकार किया तथा भारत विभाजन का दोष किसे दिया जाए इत्यादि।

इन प्रश्नों का उत्तर देना या ढूंढना वास्तव में कठिन ही होगा।

वेवल प्रस्ताव की असफलता के पश्चात् राष्ट्रवादी मायूस तथा निराश थे। परंतु आइ.एन.ए. सिपाहियों का मुकदमा तथा चुनावों की घोषणा ने फिर उत्साह की नई लहर का संचार किया तथा ऐसा लगा अंधेरी गुफा में रोशनी की उम्मीद अभी बाकी है। वाइसराय लार्ड वेवल (1943-47) ने 19 सितंबर, 1945 की घोषणा में यह कहा कि चुनावों के बाद एक संविधान सभा का गठन होगा तथा उसकी कार्यकारिणी कौंसिल में भी भारतीय राजनीतिक दलों का ही प्रभुत्व होगा। ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमंट एटली ने भी 19 सितंबर, 1945 की घोषणा का समर्थन किया तथा यह भी कहा कि क्रिप्स-प्रस्ताव अभी भी, पूर्ण रूप तथा उद्देश्यपूर्ण, अर्थ रखते हैं। भारत मंत्री पैट्रिक लारेंस ने यह साफ कर दिया कि संविधान सभा बनाने की इच्छा ब्रिटिश सरकार की पूर्ण रूप से कार्य करेगी तथा इसके लिए वह तुरंत ही पार्लियामेंट के अनुमोदन के बाद एक सभा प्रस्ताव लेकर भारत भेजेंगे तथा यह भी जोड़ दिया कि इस सभा के प्रस्तावों या मिशन के प्रस्तावों को मानने को ब्रिटिश सरकार बाध्य नहीं होगी परंतु यह अपनी नीति को मिशन के प्रस्ताव से नहीं बांधेगी अर्थात् अतिंम निर्णय ब्रिटिश सरकार का ही होगा।

1945-46 के चुनाव

केंद्रीय तथा प्रांतीय असैंबलियों के चुनाव सर्दियों में 1945-46 में संपन्न हुए। हम पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार मुस्लिम लीग तथा जिन्ना ने पाकिस्तान आंदोलन के चलते मुस्लिम मतदाताओं का समर्थन सांप्रदायिक तरीके से हासिल किया तथा लीग का कांग्रेस के प्रति दुष्प्रचार काफी सफल रहा। इसी प्रकार हिंदु महासभा तथा आर्यसमाजी हिंदु सांप्रदायिक संगठनों ने भी लोगों को बांटने तथा सांप्रदायिक आधार पर मतदाताओं का ध्रुवीकरण किया तथा इस पूरे मामले में ब्रिटिश सरकार ने भी अपना योगदान दिया जो शुरू से ही, 'फूट डालो शासन करो' की नीति पर अमल कर रही थी। इसलिए 1937 के चुनावों के विपरीत इन चुनावों के परिणाम रहे। कांग्रेस ने 102 केंद्रीय असैंबलियों में से 59 सीटों पर विजय प्राप्त की तथा प्रांतों में इसे उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रांत, यू.पी., बम्बई, मद्रास तथा आसाम और उत्तरी पश्चिमी सीमांत प्राप्त या (एन.डब्बयू.एफ.पी.) में बहुमत मिला। यहां अंतिम दो प्रांत मुस्लिम लीग के पाकिस्तान योजना के निशाने पर थे। हिंदु महासभाइयों तथा साम्यवादियों को निराशा व मायूसी ही हाथ लगी। परंतु सबसे चौंकाने वाले परिणाम मुस्लिम लीग के लिए थे। मुस्लिम लीग ने केंद्रीय असेंबलियों में सुरक्षित मुस्लिम सीटों—सभी 30 स्थानों पर विजय प्राप्त की तथा प्रांतीय असैंबलियो में भी 509 स्थानों में से 442 स्थानों पर सफलता प्राप्त की, परंतु लीग की सरकार सिर्फ सिंध तथा बंगाल में ही बन पाई। हालांकि पंजाब में इसने अधिकतम सीटें

अगस्त प्रस्ताव

द्वितीय विश्व के दौरान जब कभी भी ब्रिटिश सरकार को यह लगा कि अब युद्ध में भारतीय लोगों का समर्थन आवश्यक है तो उसने राजनीतिक नेतृत्व से बातचीत का रास्ता अपनाया। विशेषकर ब्रिटेन के युद्ध के मौके पर तत्कालीन वायसराय तथा गवर्नर-जनरल लिनलिथगो (1936-43) ने अगस्त प्रस्तावों की घोषणा की जिसकी प्रमुख व्यवस्थाएं थी :

1. वाइसराय आपनी कौंसिल को विस्तारित कर भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाएंगे।
2. भारतीयों को डोमिनयून स्टेट्स का दर्जा दिया जाएगा परंतु इसकी कोई तिथि नियत नहीं की गई।
3. युद्ध के पश्चात् संविधान सभा का निर्माण किया जाएगा तथा भारतीयों को संविधान उनकी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक अवधारणाओं के अनुसार गठित करने दिया जायेगा परंतु उन्हें ब्रिटिश सरकार की जिम्मेदारियें जैसे—रक्षा, भारतीय सेवाएं, अल्पसंख्यकों के अधिकार आदि के बारे में शर्तों का सम्मान करना होगा।
4. सरकार ने यह भी स्वीकारा कि संविधान निर्माण के समय सभी अल्पसंख्यकों के अधिकार तथा उनकी सहमति का ध्यान रखा जाएगा।
5. सरकार युद्ध परामर्श सीमित या कौंसिल की भी स्थापना करेगी।
6. लिनलिथयो की यह घोषणा 17 अक्तूबर, 1939 के भाषण में कही बातों से कुछ अधिक नहीं परंतु यह स्वीकार कर लिया गया कि संविधान-निर्माण में भारतीयों का सैद्धांतिक अधिकार होगा परंतु अभी भी 'डोमिनियन स्टेटस्' की बात की गई। 'पूर्ण स्वतंत्रता' जो कांग्रेस का 1920 से ही लक्ष्य था, को अभी भी मान्यता नहीं दी गई।

कांग्रेस ने अगस्त प्रस्ताव को रद्द कर दिया। गांधी जी ने कहा यह प्रस्ताव राष्ट्रवादियों तथा ब्रिटिश शासको में दूरी पैदा करेंगे तथा नेहरू ने डोमिनियन स्टेटस् को यह कहते हुए नकार दिया कि 'यह प्रस्ताव दरवाजे में ठुकी हुई कील की तरह मृतप्राय: है।'

मुस्लिम लीग ने केवल प्रस्ताव का वह भाग स्वीकृत किया जो उन्हें अच्छा लगता था। (नं. 4)

(175 में से 79) जीतीं। परंतु सरकार बनाने में सफल न हो सकी। खिज्र हयात खान की यूनियनिस्ट पार्टी ने केवल 10 सीटों पर ही सफलता प्राप्त की परंतु अकाली कांग्रेस के गठबंधन की वजह से वह अपनी प्रांतीय सरकार को 1 वर्ष तक और खींचने में सफल अवश्य रहे। इसके कारण लीग में निराशा फैली तथा उन्हें शहीद बनने का अच्छा मौका मिल गया। परंतु लीग की सफलता से यह अनुमान लगाना मुश्किल था कि सभी मुसलमानों ने लीग का समर्थन किया क्योंकि इन चुनावों में केवल 10% से 15% तक ही मुस्लिम जनसंख्या ही वोट डालने का अधिकार रखती थी, जिनमें पढ़े-लिखे व्यापारी तथा जमींदार वर्ग शामिल थे। आम बहुसंख्यक मुस्लमान चुनावों में कोई भी अधिकार नहीं रखते थे।

ब्रिटिश भारत को क्यों छोड़ गए?

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन अभी भी इस स्थिति में था कि वह भारत पर आसानी से राज्य कर सकता था परंतु बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन ने उन्हें ऐसा करने पर मजबूर कर दिया। 1930-1940 के दशक के दौरान सेना तथा प्रशासनिक अमले में पहले वाली स्वामिभक्ति का अभाव था। यह दोनों ही भारत में ब्रिटिश प्रशासन के मुख्य स्तंभ थे। सिविल सेवा के अधिकारी अपने भविष्य के प्रति सजग थे।

इसके पहले के अधिकारी ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा-भावना से ओत-प्रोत होते थे तथा 1937 के चुनावों के बाद कांग्रेस मंत्रालय के कारण भी काफी उदासीन थे। जो पुलिस वाले पहले राष्ट्रवादियों को प्रताड़ित करते थे, अंत: उन्हीं को सुरक्षा प्रदान करने लगे थे तथा अब वे इस बात से भयभीत थे कहीं चुनावों के दौरान उनकी कार्रवाईयों की जांच-पड़ताल न हो जाए। वायसराय लिनलिथगो (1936-43) ने पुलिसवालों को आश्वस्त किया कि उनके विरुद्ध कार्रवाई नहीं होगी परंतु अगले वायसराय लार्ड वेवल को इस बारे में काफी मशक्कत करनी पड़ी क्योंकि प्रांतीय सरकारों को पुलिस कार्रवाई की जांच-पड़ताल की मांग को बाध्य किया गया। लार्ड वेवल ने कहा यह शायद सबसे मुश्किल काम था। परंतु अंग्रेजों को अभी भी विश्वास नहीं क्योंकि उन्हें भय था कि सर्दियों के चुनावों के बाद (1945-46) कहीं 1942 की तरह जनांदोलन न शुरू हो जाए। इसके साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यू.एस.ए. तथा यू.एस.एस.आर. ने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की भर्त्सना करना आरंभ कर दिया था तथा इस दबाव के चलते इंग्लैड की सरकार को पुराने औपनिवेशिक शासन को बदलने को बाध्य होना पड़ रहा था तथा भारत को छोड़ना अब उनके लिए उपनिवेशवाद से बाहर आने का सम्मानजनक रास्ता था तथा वह चाहते थे कि भारत को आसानी तथा शांति से सत्ता का हस्तांतरण किया जाए, जिससे भविष्य में उससे बेहतर संबंध बने रहें।

जब से कांग्रेस ने भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत की थी तब से ब्रिटिश सरकार पर भारत के नेताओं से सत्ता सौंपने के लिए बातचीत करने का दबाव बनता ही जा रहा था तथा राजनीतिक नेतृत्व भारत में संविधान सभा के गठन की मांग कर रहा था और यह मांग भी उठी कि राष्ट्रीय सरकार को बना कर सत्ता भारत को सौंपी जाए। इसके लिए सत्ता 1946 में मार्च माह में, केबिनेट मिशन, पेथिक लारेंस (भारत मंत्री) की अध्यक्षता में दो सदस्य स्टेफर्ड क्रिप्स (व्यापार बोर्ड के अध्यक्ष) तथा ए.वी. अलेक्जेंडर (प्रथम लार्ड एडमिलिट्री) भारत आया।

केबिनेट मिशन योजना

केबिनेट मिशन के सदस्यों ने भारत में हर राजनीतिक दल के साथ बातचीत तथा विचार-विमर्श किया। परंतु दोनों सबसे बड़ी पार्टियां—कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग किसी भी मुद्दे पर सहमत न हो पाईं चाहे वह भारत विभाजन हो या सत्ता का हस्तांतरण। कांग्रेस का यह मानना था कि सत्ता को एक केंद्र के अधीन कर स्वतंत्रता दे दी जाए तथा मुस्लिम प्रांतों की स्वतंत्रता इत्यादि सब उसके बाद ही हो। यह लगता था कि कांग्रेस अब आजादी लेने की जल्दबादी में थी जिससे कि 'सामाजिक कानून' भारत में मान्य हो सकें। पूरे देश में हड़तालों का दौर चल रहा था। कांग्रेस को यह भय सता रहा था कि कहीं इसके कारण साम्यवादी कहीं समाज को प्रतिक्रियावादी न बना दें क्योंकि उत्तर-पूर्व, चीन तथा कुछ एशियाई देशों में साम्यवाद का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा था। लीग जो बुर्जवा तथा सभ्रांत मुसलमानों की संस्था भी, यह दावा करती थी कि वही मुसलमानों की आवाज है, चाहती थी कि मुस्लिम प्रांतों के बारे में फैसला तुरंत ब्रिटेन के रहते ही हो जाए तथा लीग को कांग्रेस नेताओं की ईमानदारी पर संदेह था बल्कि उन्हें अब गांधी जी पर विश्वास नहीं रहा था इसलिए वह ब्रिटिश सत्ता के अंत से पहले ही कोई फैसला चाहते थे।

केबिनेट मिशन ने अनेकों लोगों से विचार-विमर्श कर यह नतीजा निकाला कि अखंड भारत ही समस्या का एकमात्र विकल्प है तथा विभाजन करना वास्तव में बहुत मुश्किल होगा और पाकिस्तान की योजना तर्कसंगत नहीं होगी। अल्पसंख्यकों का मामला अखंड भारत के अंदर रहकर ही सुलझाया जा सकता है। विभाजन के रास्ते में आने वाली मुश्किलों को मिशन ने इस तरह से परिलक्षित किया :

1. पंजाब (38%), बंगाल तथा आसाम (48%) में गैर-मुस्लिम आबादी है तथा विभाजन कर देने से वही समस्या पैदा होगी जिस पर लीग मुसलमानों की बात कर रही है।
2. भारत में संचार व्यवस्था, परिवहन इत्यादि को बांधना काफी कठिन कार्य होगा।
3. सेना को बांटने से अनेक खतरे उत्पन्न हो जायेंगे।

4. रजवाड़ों के लिए किसी एक भूभाग में सम्मिलित होना काफी कठिन होगा।
5. पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को भारत पर ही निर्भर रहना होगा विशेषकर शांति तथा युद्ध के अवसरों पर।

इस तरह की वास्तविकता को ध्यान में रख केबिनेट-मिशन ने अपनी योजना 16 मई, 1946 को पेश की :

1. सभी प्रांतीय असैंबलियों को तीन विभिन्न भागों में या समूहों में बांटा गया :
   वर्ग A में सभी हिंदु बहुल प्रांत थे—मद्रास, बंबई, मध्य प्रांत, यू.पी, उड़ीसा तथा बिहार शामिल थे।
   वर्ग B में सभी मुस्लिम बहुल प्रांत थे—उत्तर पश्चिम, सीमांत प्रांत, पंजाब, सिंध।
   वर्ग C में भी पूर्वी भाग में मुस्लिम बहुल प्रांत—बंगाल तथा आसाम को शामिल किया गया।
2. इन तीनों वर्गों के A, B, C प्रांत अलग से संविधान बनाएंगे तथा बाद में यही साथ होकर एक केंद्रीय संविधान का निर्माण करेंगे।
3. आम चुनावों के बाद प्रांत इन वर्गों से बाहर आ सकते हैं तथा कोई भी प्रांत फिर से संविधान में रहने या उससे दुबारा जुड़ने के बारे में निर्णय ले सकता है।
4. रक्षा, संचार तथा विदेशी मामलों में एक ही केंद्र की सत्ता का नियंत्रण होगा।
5. सभी प्रांतों के पास अपनी स्वायत्तता होगी तथा वह केंद्रीय कानून को छोड़कर अपनी अधिशेष शक्ति का उपयोग कर सकेंगे।
6. केंद्र में कार्यकारिणी (अंतरिम सरकार) तथा विधायिका का निर्माण ब्रिटिश प्रांतों से किया जाएगा तथा केंद्रीय विधायिका में हिंदू-मुस्लिम मुद्दों को वोट के आधार पर सुलझाया जाएगा।
7. सभी रजवाड़े ब्रिटेन के नियंत्रण से मुक्त रहेंगे तथा वे स्वयं ही इन प्रांतों के साथ आपसी सबंध कायम करेंगे।
8. सबसे अधिक महत्वपूर्ण होगा संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन। यह सभा कुल 389 सदस्यीय होगी, इसमें 292 सदस्य प्रांतीय असैंबलियों के रहेंगे, 93 सदस्य देशी रियासतों से तथा 4 सदस्य मुख्य कमिश्नर प्रांतों से आएंगे। देशी रियासतों के 93 सदस्य उनके द्वारा नामांकित किए जाएंगे तथा प्रांतीय असैंबलियों के 292 सदस्य एकल हस्तांतरणीय चुनाव प्रणाली के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाएंगे तथा यह नियम भी बना दिया गया कि प्रांतीय आसैंबलियों में हर एक दस लाख आबादी पर सीटों का बंटवारा होगा तथा यह इस प्रकार से किया जाएगा जिससे पृथक निर्वाचन प्रणाली भी प्रभावित नहीं होगी।

इनका निर्धारण इस प्रकार से होगा :

वर्ग A

प्रांत	*सामान्य*	*मुस्लिम*	*कुल*
यू.पी.	47	8	55
मद्रास	45	4	49
बिहार	31	5	36
बम्बई	19	2	21
मध्य प्रांत	16	1	17
उड़ीसा	9	0	9
	167	20	187

वर्ग B

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	सिख	कुल
पंजाब	8	16	4	28
सिंध	1	3	0	4
उ.प. सीमांत प्रांत	0	3	0	3
प्रांत (एन.डब्ल्यू.एफ.पी.)	9	22	4	35

वर्ग C

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	कुल
बंगाल	27	33	60
असम	7	3	10
	34	36	70

कुल योग: 187+35+70 =292

कैबिनेट मिशन ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को अनेक मुद्दों में बांट दिया। हालांकि मिशन ने पाकिस्तान की मांग को नहीं माना परंतु जानबूझकर यह सही नहीं किया। क्या वर्गीकरण आवश्यक था या नहीं? कांग्रेस के अध्यक्ष पंडित जवाहर लाल नेहरू इस उम्मीद में थे कि असम तथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत जहां पर कांग्रेस कि स्थिति अच्छी थी, ये प्रांत वर्गीकरण को अमान्य करेंगे परंतु लीग इसे जरूरी मान कर खुश थी कि उसका पाकिस्तान का सपना पूरा होगा और उसने योजना को 6 जून, 1947 को अपनी मंजूरी दे दी। (कांग्रेस सरकार ने उसे बाद में मंजूर किया पंडित नेहरू ने 7 जुलाई, 1946 को अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारी समिति ने यह सुझाव दिया कि कांग्रेस इस योजना से बंधी हुई नहीं है। वह तो सिर्फ संविधान सभा में जाने के लिए योजना को स्वीकृत कर चुकी है।) वास्तविक निर्णय तो संविधान सभा की सार्वभौमिकता से ही निश्चित किया जाएगा। जुलाई, 1946 में संविधान सभा के लिए चुनाव हुए। इसने 205 सामान्य सीटों पर विजय प्राप्त की तथा मुस्लिम लीग ने 78 में से 73 मुस्लिम सीटों पर विजय प्राप्त की। इससे कांग्रेस की स्थिति और मजबूत हो चुकी थी। वायसराय ने अंतरिम सरकार बनाने में देरी की। जिन्ना तथा मुस्लिम लीग को यह उम्मीद थी कि योजना को पहले स्वीकृत कर लेने के कारण वायसराय उन्हें अंतरिम सरकार बनाने का मौका देंगे परंतु जिन्ना को इससे काफी निराशा हुई और नेहरू की 7 जुलाई की घोषणा ने आग में घी का काम किया। जिन्ना ने अपनी स्वीकृत को वापस ले लिया।

कैबिनेट मिशन के सदस्यों को कांग्रेस के ज्यादा समर्थन में देखा गया। वायसराय लार्ड वेवल को यह न पसंद था। इन सब के चलते हुए लीग सीधी कार्यवाही दिवस मनाने का निर्णय लिया जो एक दुर्भाग्यशाली निर्णय था तथा यह नारा दिया कि लड़ के लेंगे पाकिस्तान, ले के रहेंगे पाकिस्तान। कलकत्ता में 16 अगस्त, 1946 को सांप्रदायिक दंगा शुरू हुआ। केवल चार दिन में ही चार से पांच हजार मासूम जानें चली गईं और दस हजार लोग घायल हुए। हिंदू और मुसलमानों ने एक दूसरे पर हमले किए तथा स्थिति बड़ी विकट हो गई। ऐसा माना जाता है कि यह दंगे बंगाल में लीग की सरकार के मुख्यमंत्री सुहरावर्दी के इशारे पर हुए। उसने मुस्लिम दंगाइयों को मारकाट करने के लिए खुला छोड़ दिया तथा पुलिस और सेना को आपसी मिलीभगत में कोई भी कार्यवाही करने से रोक दिया। इन दंगों को लेकर कांग्रेस नेतृत्व भौंचक्का रह गया। महान शिक्षाविद् डा. जाकिर हुसैन ने यह टिप्पणी की कि यह आग जो आज जल रही है, ऐसा लगता है कि बगीचे के फूलों को तहस-नहस कर दिया गया है। भारत

जैसे महान तथा मानवतावादी देश को यह आग झुलसा रही है। हम किस प्रकार ऐसे ताजे फूलों को यहां उगा सकते हैं जो अच्छे आदर्श के हों और किस प्रकार हम इन्सान की नैतिकता को बचा सकेंगे जब वह जानवरों की तरह व्यवहार कर रहा है। इस बर्बरता के माहौल में हम अपनी संस्कृति का बचाव कैसे करेंगे। साथ-ही-साथ मांसाहारी जीवों के भक्षण की तरह हम मानवता को कैसे बचा पाएंगे। यह शब्द आपको बहुत बुरे लग रहे होंगे परंतु चारों तरफ जो माहौल है। हम यह देख रहे हैं कि किस प्रकार छोटे बच्चे भी सुरक्षित नहीं है। किसी प्रकार वह क्रूरता का निशाना बन रहे हैं। भारत के एक कवि के अनुसार यह कहा गया है कि एक बच्चा अपने साथ खुदा का संदेश साथ लाता है तथा उसका दिल कोमल होता है। क्या हम लोगों में इतनी भी मानवता नहीं बची कि हम फूल से बच्चों को इतनी बुरी तरह से कुचलना चाहते हैं। खुदा के लिए हम आग को बुझाने के लिए आगे आएं। अब यह समय नहीं है कि यह आग किसने लगाई और क्यों भड़काई। आओ हम इसे बुझाने की कोशिश करें। ये किसी कौम के जीवित रहने के लिए ही जरूरी नहीं है, परंतु मानवता के जीवन के लिए और संस्कृति के बचाव के लिए इस भयानक पशुता को समाप्त किया जाए। खुदा के लिए इस तरह की घटनाओं में हमारी संस्कृति को समाप्त होने से बचाएं। (यह उस भाषण के अंश थे जो डा. जाकिर हुसैन ने 17 नवंबर, 1946 को जामिया मिलिया इस्लामिया के रजत जयंती समारोह में व्यक्त किए थे। इस समारोह में जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, जिन्ना तथा लियाकत अली खान ने भी भाग लिया था)।

परंतु सांप्रदायिक हिंसा तेजी के साथ फैलने लगी थी तथा नये क्षेत्रों नोअखाली (पूर्वी बंगाल 10, अक्टूबर), बिहार (25, अक्टूबर) गढ़मुक्तेश्वर, यू.पी. (नवंबर) तथा पंजाब (मार्च, 1947) में फैल गए। यह दंगे स्वतंत्रता तथा विभाजन तक जारी रहे।

वेवल सरकार की चिंता न सिर्फ बढ़ते सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को लेकर थी बल्कि वह इस बात से भयभीत थे कि किसान, रेलवे, डाक कार्मचारी तथा श्रमिक वर्ग भी हिंसक हो उठे थे तथा वे नहीं चाहते थे कि 1942 की घटनाओं की पुनरावृत्ति हो। वे जल्दी से जल्दी राजनीतिक सत्ता एक ऐसी सरकार को सौंपना चाहते थे जो स्थिति पर नियंत्रण पा सके। चाहे वह अब लीग या लीग के बिना ही क्यों न बने। अगर कांग्रेस सरकार बनाकर साम्यवादी को नियंत्रित कर सकती है तो उन्हें सरकार बनाने का निमंत्रण दिया जा सकता था। लार्ड वेवल की सरकार कांग्रेस को प्रशासनिक कार्यों में उलझाना चाहती थी जिससे कि वह राजनीति न कर सके। (सुमित सरकार आधुनिक भारत, 1885-1947, राजकमल प्रकाशन, 1992, पृ. सं-481) गुप्तचर विभाग भी साम्यवादी आंदोलन के नियंत्रण के लिए सत्ता एक जिम्मेदार सरकार को सौंपने के लिए दवाब बना रहा था (होम पोलिटिकल (i) जुलाई 12, 1946)। गांधी जी ने पहल करने की कोशिश की। उन्होंने यह सुझाव दिया कि अगर जिन्ना को प्रधानमंत्री पद दे दिया जाए तो वह पाकिस्तान की मांग छोड़ देंगे तथा सांप्रदायिक हिंसा का दौर स्वत: समाप्त हो जायेगा क्योंकि जिन्ना सिर्फ 'कौमबाजी' ही कर रहे हैं (मोहम्मद अली पेपर्स 3702-3707, vol. 8, प्रेमचंद केंद्र, जामिया मिलिया इस्लामिया)। गांधी जी की सलाह को पटेल तथा नेहरू ने पूर्णतया अस्वीकार दिया तथा लार्ड वेवल ने सितंबर 2, 1946 को अंतरिम सरकार बनाने का न्यौता भेजा। लीग सरकार बनने से पहले सभी मसलों को सुलझाना चाहती थी। इसलिए उसने अंतरिम सरकार का बहिष्कार किया। नेहरू के कैबिनेट में सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद, सी. राजगोपालाचारी, सरदार बलदेव सिंह, डा. जान मथाई, आसफ अली, सी.एच. भाभा, शरतचंद्र बोस, सर शफात अहमद खान शामिल हुए। इसके अलावा जगजीवन राम तथा सैयद अली जहीर भी थे। परंतु लार्ड वेवल लीग को सरकार से बाहर रखकर खुश नहीं थे। उन्होंने जिन्ना को अंतरिम सरकार में शामिल होने को कहा। लीग ने जिन्ना (दुष्ट प्रतिभाशाली आत्मा) के कहने पर अंतरिम सरकार में शामिल होने का मन बना लिया परंतु उनका मुख्य उद्देश्य पाकिस्तान के लिए सीधी कार्रवाई को आगे ही बढ़ाना था (सुचेता महाजन, इंडिपेंडेंस एण्ड पार्टीशन, सेज पब्लिकेशन 2000 पृ. 254)। लीग के सदस्यों, जिन्हें इस अंतरिम

सरकार में शामिल किया, उसमें से केवल लियाकत अली खान, जिन्हें वित्त मंत्री का पद मिला, ही महत्वपूर्ण थे। अन्य नेता, अब्दुल रब निशतार, गजंफ्फर अली खान, आई.आई. चंदरीगर तथा जोगेद्र नाथ मंडल (अनुसूचित जाति) केवल दूसरी श्रेणी के ही नेता थे। अन्य नेता प्रचार के लिए सुरक्षित रखे गए। वास्तव में लीग अंतरिम सरकार में शामिल होकर यह जतलाना चाहती थी कि भारत में हिंदू-मुसलमान इकट्ठे नहीं रह सकते तथा विभाजन ही केवल एकमात्र रास्ता बचा है। मुस्लिम लीग अंतरिम सरकार में शामिल होने का लक्ष्य यही बनाया था कि वे यह जता दें कि विभाजन ही अन्तिम विकल्प है। लियाकत अली खान मुस्लिम सदस्यों के साथ अलग से बैठा करते थे, जिसके कारण जवाहरलाल नेहरू को हिंदू सदस्यों के साथ मीटिंग करनी पड़ती थी क्योंकि कांग्रेस में एक आसफ अली खां ही एक मुस्लिम सदस्य थे। अन्य मुस्लिम सदस्यों को सैयद अली जहीर तथा सफात अहमद खान को त्यागपत्र देना पड़ा था क्योंकि उनकी जगह लीग के सदस्य को दी थी। लीग के इस व्यवहार से दुखी होकर पटेल तथा नेहरू ने भारत विभाजन का मन बना लिया था। लीग ने दिसंबर 1946 की पहली मीटिंग का बहिष्कार किया था, जो अंतरिम अध्यक्ष सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षाता में हुई। इसलिए फरवरी 1947 के प्रथम सप्ताह में संविधान सभा के 9 सदस्यों ने जो अंतरिम सरकार में शामिल थे, ने मिल कर वायसराय को पत्र लिखा कि लीग के सदस्यों का असहयोग का रवैया ठीक नहीं हैं तथा उन्होंने यह मांग भी की कि लीग सदस्य त्यागपत्र दे दें।

20 फरवरी, 1947 को क्लेमंट एटली ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने यह घोषणा की कि इस तरह की राजनीतिक अनिश्चितता चिंता का विषय है तथा काफी खतरनाक है और इसे अधिक समय तक जारी नहीं रखा जा सकता। ब्रिटिश सरकार की यह इच्छा है कि इस स्थिति को समाप्त कर जल्द-से-जल्द सत्ता का हस्तांतरण किसी उत्तरदायी सरकार को जून, 1948 तक कर दिया जाए। उन्होंने आगे इस घोषणा को जारी रखते हुए कहा कि ब्रिटिश सरकार को यह निर्णय लेना ही होगा कि भारत में केंद्रीय सत्ता किसे सौंपी जाए तथा केंद्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों में कैसे तालमेल हो क्योंकि ब्रिटेन चाहता है कि भारत के लोगों के हित में जो सबसे बेहतर हो वही किया जाए। उन्होंने लार्ड वेवल को गवर्नर-जनरल के पद से हटाने की घोषणा भी की तथा नए गवर्नर-जनरल लार्ड माउंटबेटन मार्च, 1947 में भारत पहुंचे।

माउंटबेटन योजना, 3 जून, 1947

नये वायसराय माउंटबेटन काफी तेज-तर्रार तथा कूटनीतिक थे। उन्होंने समय नष्ट न करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि वह कुछ ही महीनों में भारत में उत्तरदायी सरकार को सत्ता सौंप देंगे। इसके लिए उन्होंने भारत के राजनीतिक नेतृत्व से बातचीत करना प्रारंभ किया, जिसमें उन्होंने गांधी तथा जिन्ना से शुरुआती बातचीत की। इससे यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार इन दोनों को कितना महत्व देती थी। 24 मार्च से 6 मई तक माउंटबेटन ने भारतीय नेताओं के साथ 133 के लगभग बैठकें कीं। शुरुआत में माउंटबेटन देशी-रियासतों को भी स्वतंत्रता देने के पक्षधर थे, जिसे प्लान बालकन का नाम दिया गया परंतु नेहरू के कड़े विरोध के बाद इसका विचार त्याग दिया गया। अंततः जिसे पटेल-मेनन प्लान या योजना को स्वीकृति दी गई उसके आधार पर 'डोमिनियम स्टेट्स' तथा सत्ता हस्तांतरण दो अलग-अलग सप्रंभु राष्ट्रों भारत तथा पाकिस्तान का निर्माण था। इस योजना पर नेताओं से विस्तृत बातचीत कर माउंटबेटन ब्रिटेन के अनुमोदन के लिए लंदन गए तथा वहां से अंतिम मसौदे को स्वीकार कराकर वह भारत लौटे तथा जिस योजना की घोषणा उन्होंने की, वह माउंटबेटन योजना कहलाई। जिसके प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार थे :

1. पंजाब तथा बंगाल में लेजिस्लेटिव असैंबली के सदस्य अलग से बैठक कर इन दोनों प्रांतों के भाग्य का निर्णय लेंगे। हिंदू मुस्लिम आधार पर अगर यह अनुमोदन आम सहमति से होगा तो इन प्रांतों का विभाजन कर दिया जाएगा।
2. यदि विभाजन हो गया तो दो अलग-अलग राष्ट्र भारत व पाकिस्तान तथा असैंबलियां संविधान सभा अस्तित्व में आएंगी।

3. सिंध की लेजिस्लेटिव असैंबली यह निर्णय अलग से लेने के लिए विशेष सत्र का आयोजन करेगी।
4. उत्तर पश्चिमी सीमांत क्षेत्र सिलहट जिला (आसाम) यह निर्णय जनमत संग्रह के आधार पर करेंगे।
5. सभी रियासतों का स्वतंत्र रहने का अधिकार समाप्त कर दिया गया। उन्हें भारत या पाकिस्तान में इच्छानुसार शामिल होने का अधिकार दिया गया।
6. भारत 15 अगस्त, 1947 को आजाद या स्वतंत्र होगा।
7. भारत को 'डोमिनियन स्टेट्स' का दर्जा प्राप्त रहेगा। यह सत्ता हस्तांतरण होने तक लागू रहेगा।
8. विभाजन की स्थिति में एक 'सीमा आयोग' का गठन होगा जो सीमाओं का निर्धारण करेगी।
9. हैदराबाद राज्य का पाकिस्तान में विलय का प्रश्न टाल दिया गया था (यह सब पंडित नेहरू के प्रयासों के परिणामस्वरूप हुआ था)।

15 अगस्त, 1947

कांग्रेस ने विभाजन स्वीकारा

कांग्रेस ने विभाजन की मांग स्वीकार की। एक मई, 1947 को कांग्रेस कार्य समिति ने विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार किया तथा जून 15, 1947 को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने माउंटबेटन योजना को अपनी स्वीकृति दी तथा भारत विभाजन का अनुमोदन कर दिया। कांग्रेस के कुछ सदस्य मौलाना आजाद के नेतृत्व में इस विभाजन के विरोधी थे।

गांधी जी ने नेताओं से विभाजन स्वीकार करने को तो कहा परंतु यह सलाह भी दी कि वे इसे मन में न रखें। नेहरू तथा पटेल अप्रैल में ही विभाजन को स्वीकृति दे चुके थे। परंतु सबसे कुपित थे उत्तरी-पश्चिमी सीमात प्रांत के नेता अब्दुल गफ्फार खान। यह पठान नेता कांग्रेस के उस निर्णय से बहुत दुखी थे। जिसमें उसने इस प्रांत में जनमत संग्रह करवाने की बात मान ली थी। क्योंकि वहां पर कांग्रेस की सरकार थी और उसका काफी प्रभाव भी था। परंतु जनमत संग्रह में केवल कुछ गिने-चुने व्यक्तियों को ही वोट डालने का अधिकार था तथा यह काफी सीमित था तथा मध्यम वर्ग जिसके पास काफी वोट थे, वह लीग के समर्थक थे। बादशाह खान ने एक पत्र में, जो उन्होंने गांधी जी को लिखा, यह उल्लेख किया कि आपने हमें पीठ पीछे छुरा मारने जैसी कार्यवाही की है। पठानों ने हमेशा ही कांग्रेस का समर्थन किया था तथा वे लीग के कट्टर विरोधी रहे थे तथा उसके द्वि-राष्ट्र सिद्धांत का मुस्लिम होते हुए भी भारी विरोध किया था।

कांग्रेस ने विभाजन को मानने के लिए काफी सारे तर्क दिए। उनका यह मानना था कि विभाजन जन-भावनाओं को प्रदर्शित करता है और यह उम्मीद जताई कि यह एक अस्थाई स्थिति है, जिससे सांप्रदायिक दंगे रुक जाएंगे। 1942 के अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया था कि संविधान बनाते समय भारत के किसी भी भू-भाग को उसकी मर्जी के बिना या बलपूर्वक मानने को बाध्य नहीं किया जाएगा। इसलिए नेहरू ने यह व्यक्त किया कि अगर मुसलमान पाकिस्तान चाहते हैं तो हमें उन्हें नही रोकना चाहिए। गांधी जी ने भी यही विचार प्रकट किए और कहा कि इन क्षेत्रों में रहने वाले लोग विभाजन चाहते हैं तो उन्हें कोई भी नहीं रोक सकता। सरतचंद्र बोस ने बंगाल के विभाजन का विरोध किया परंतु पटेल, नेहरू तथा हिंदु महासभाई बंगाल के विभाजन को चाहते थे। ऐसा लगता है कांग्रेस को वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं था। उसके नेताओं को यह भ्रम हो गया था कि विभाजन अस्थाई स्थिति है और संभवत: भारत फिर से एक हो जाएगा। गांधी जी ने अपनी सोच में यह माना कि हमें विभाजन दिलों से न होकर वैसे ही मानना चाहिए। गिरिजा शंकर वाजपेयी वास्तव में सही थे, जब उन्होंने कहा कि भारत के दो भाग आने वाले लंबे समय तक दोस्त न रह कर दुश्मन ही साबित होंगे।

गांधी जी ने विभाजन इसलिए भी स्वीकार नहीं किया क्योंकि हिंदू और सिख भी इसे चाहते थे क्योंकि वह लोगों की भावनाओं को समझ सकते थे। इसलिए लगभग सभी नेता कुछ को छोड़ कर विभाजन को ही अंतिम हल मानते थे परंतु यह कहना मुश्किल होगा कि क्या विभाजन लोगों की पसंद थी या यह उन पर थोपा गया था। इस प्रश्न का उत्तर देना काफी मुश्किल होगा। सरकार तथा सभी राजनैतिक दल, माउंटबेटन योजना को अंतिम रूप देने मे लग गईं।

पंजाब तथा बंगाल की लेजिस्लेटिव असैंबलियों ने विभाजन के पक्ष में निर्णय लिया। पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में शामिल हो गए। सिलहट का विलय पूर्वी पाकिस्तान में हुआ। उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत में जनमत संग्रह पाकिस्तान के पक्ष में रहा। ब्लूचिस्तान तथा सिंध ने भी पाकिस्तान के प्रति समर्थन व्यक्त किया। माउंटबेटन योजना के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ब्रिटिश संसद में पारित हुआ तथा 15 अगस्त 1947 को इसे पूरी तरह लागू कर दिया गया।

कांग्रेस का यह कहना कि ग्रह युद्ध से बेहतर विभाजन ही था। इसने विभाजन को कम बुराई वाला कदम जान कर स्वीकार किया था। परन्तु राष्ट्र ने अब तक का सबसे भयंकर सांप्रदयिक दंगा इसी दौरान देखा। हजारों की संख्या में सीमा के दोनों तरफ लोगों ने अपनी जानें गवाईं। दुकानें, औद्योगिक केंद्र, मस्जिदें, मंदिर तथा गुरुदवारे जला दिए गए या तोड़ गए। औरतों के साथ बलात्कार हुए, छोटी बच्चियों को भी नहीं छोड़ा गया। चारों तरफ अराजकता, हिंसा, निराशा, घृणा तथा गुस्से का वातावरण था। इस तरह के भयंकर मारकाट के पीछे एक कारण यह भी था कि माउंटबेटन को भगवान जाने इतनी जल्दी क्यों थी, जिस तरह से उन्होंने विभाजन योजना को लागू किया। 3 जून, 1947 से 15 अगस्त, तक मात्र 72 दिनों में ही उन्होंने संसार की दूसरी आबादी वाले क्षेत्र को तेजी से विभाजन की ओर ला दिया।

अधिकारियों का यह मानना था कि अगर सही ढंग से जनसंख्या की अदला-बदली की जाती तो शायद काफी समय कम से कम कुछ साल तो लग ही जाते। लोकहर्ट (भारतीय सेना के सर्वोच्च कमांडर, 15 अगस्त-31 दिसम्बर 47) ने यह शब्द व्यक्त किया था। अगर सिविल सेवा सेना के अनेक अधिकारी पहले से सजग होते तो शायद आजादी के दिनों में जो इतनी अराजकता फैली, वह शायद न फैलती (विपिन चंद्रा India's Struggle for Independence, Penguin 1989, p. 499)।

सीमा आयोग (रेडक्लिफ इसके अध्यक्ष) ने 12 अगस्त तक अपना निर्णय दे दिया था। परंतु माउंटबेटन ने इसकी घोषणा आजादी से कुछ क्षण पहले ही की जिसके कारण लोग इस परेशानी में रहे कि क्या वे भारत में है या पाकिस्तान में। अनेक गांवों में भारत तथा पाकिस्तान के झंडे साथ-साथ लहराए गए। लखनऊ में कुछ मुसलमानों ने पाकिस्तान के झंडे लहराए। उन्हें यह भ्रम था कि लखनऊ अब पाकिस्तान का हिस्सा बन चुका था।

लोग इतने मासूम थे कि उन्हें यह आभास ही नहीं था विभाजन का अर्थ होगा आबादी की अदला-बदली। पटेल जैसे नेता यह मानते थे कि पाकिस्तान से सभी हिंदू व सिख भारत आ जाएं तथा सभी मुसलमान पाकिस्तान चले जाएं, जो माउंटबेटन योजना के विपरीत था। नेताओं तथा जनता में काफी दूरी बन चुकी थी। जिन्ना का माउंटबेटन को गवर्नर-जनरल स्वीकार न करना भी एक दूसरी बड़ी बाधा थी, जिसके कारण सही तरह से संपर्क स्थापित करने में मुश्किलें आयीं। अगर कुछ महीनों के लिए सेना की संयुक्त कमान बनी रहती तो कश्मीर में हमले को टाला जा सकता था। क्या विभाजन को टाला जा सकता था या नहीं और अगर नेताओं तथा ब्रिटिश सरकार ने सही निर्णय लिया होता तो शायद इतने बड़े पैमाने पर हुए खून-खराबे को टाला जा सकता था।

यह प्रश्न सामने आता है कि किसको इस सब के लिए दोषारोपण किया जाए। ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो शासन करो' की पहली नीति तथा बाद में उन्होंने 'विभाजन करो तथा छोड़ो' की नीति अपनायी। लीग ने सीधी कार्रवाई दिवस के बाद जो नीति अपनायी उसमें सांप्रदायिक दंगों को हवा दी तथा पाकिस्तान के लिए खून-खराबा शुरू हुआ। इसी प्रकार हिंदुत्व ताकतों ने सांप्रदायिक हिंसा में भाग लेकर मुसलमानों

में भय तथा अविश्वास का वातावरण तैयार किया। कांग्रेस का मुसलमानों के प्रति विश्वास तथा उनका समर्थन प्राप्त न कर पाना भी एक और कारण रहा क्योंकि कुछ कांग्रेसी नेता हिंदुत्व के समर्थक थे तथा उन्हें राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने की भी जल्दी थी। यह अब पाठकों के विवेक पर ही छोड़ना होगा कि वह तथ्यों की गहन जांच-पड़ताल करें तथा इस बात का निर्णय बिना किसी भेदभाव के खुद लें कि आखिर इस प्रकार के कृत्य के लिए किसे जिम्मेदार माना जा सकता है?